**द्वितीय वर्ष**

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

**( सभ्यग्ज्ञान परिचय ) अभ्यास १**

**❀ शुभाशीर्वाद ❀**

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

**❀ दिव्य कृपा ❀**

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

**सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट - हुबली**

# स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

## १. श्री वज्र पंजर स्तोत्र

जिन शासन में अनेकानेक स्तोत्रों का खजाना है । जिन भक्ति और आत्मोन्नति के बहुत सारे स्तोत्रों की रचना पूर्वाचार्यो ने की है । यहाँ हम साधक के लिये साधना के प्रारंभ में अति आवश्यक ऐसी देह रक्षा और आत्मरक्षा के लिये प्रचलित **''श्री वज्रपंजर स्तोत्र''** का परिचय करेंगे । सदा सर्वदा सर्वत्र सहायक अद्भूत नवकार महामंत्र के नवपदो के साथ अपने देह की और आत्मा की रक्षा जोडने में आई है । सभी पूजनो और विशिष्ट साधनाओ में यह स्तोत्र बोलकर विविध मुद्राओं द्वारा वज्र के पंजरे की कल्पना की गई है । इसे क्षुद्र उपद्रवों को नाश करनेवाली महा प्रभावशाली रक्षा कही गई है । इन पंच परमेष्ठी से उत्पन्न हुई रक्षा जो करता है उसे भय, आधि, व्याधि नहीं आती ।

ऐसी रक्षा करके की गई साधना निर्विध्न बनती है और शीघ्र सफलता देती है ।

# श्री वज्रपंजर स्तोत्र

**ॐ परमेष्ठि नमस्कारं, सारं नवपदात्मकम् ;[१]**
**आत्म रक्षाकरं वज्र, पंजराभं स्मराम्यहम् .....१**
**ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितम् ;[२]**
**ॐ नमो सिद्धांणं, मुखे मुखपटं वरम् ; .....२**
**ॐ नमो आयरियाणं, अंगरक्षातिशायिनी;[४]**
**ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्द्दढम्[५] .....३**
**ॐ नमो लोअे सव्वसाहूणं, मोचके पादयोः शुभे;[६]**
**अेसो पंच नमुक्कारो, शिला वज्रमयी तले[७] .....४**

**-: शब्दार्थ :-**

परमेष्ठि नमस्कारं - पंचपरमेष्ठि नमस्कार को
सारं - साररूप
नवपदात्मक - नौ पद स्वरुपवाले
आत्मरक्षाकरं - आत्मा / शरीर की रक्षा करने वाला
वज्रपंजराभं - वज्र के पिंजरे समान
स्मराम्यहं - मैं स्मरण करता हूँ
नमो - ओंकारपूर्वक नमस्कार हो
अरिहंताणं - तीर्थंकर भगवान को
शिरस्कं - मस्तक की रक्षा करने वाले कवच रुप
शिरसिस्थितं - मस्तक पर रहे हुए
सिध्दाणं - सिद्ध भगवान को
मुखे - मुख पर
मुखपटं - मुखवस्त्रिका रुप
आयरियाणं - आचार्यजी को
अगंरक्षा - शरीर की रक्षा रुप
अतिशायिनी - अतिशय
उवज्झायाणं - उपाध्यायजी को
आयुधं - हथियार रुप
हस्तयोः - दो हाथ में
दृढ - मजबूत
लोए सव्वसाहूणं - लोक में रहे सभी साधुओ को
मोचके - दो पादुकारुप
पादयो - दोनों पैर में
शुभे - शुभ (अच्छी)
एसो पंच नमुक्कारो - ये पांच नमस्कार
शिला - शिला रुप
वज्रमयी - वज्रमय
तले - भूमितल पर

**गाथार्थ :** साररुप, आत्मा की / शरीर की रक्षा करने वाले और वज्र के पिंजरे समान परमेष्ठि नवकार का मैं स्मरण करता हूँ....१

मस्तक पर रहे हुए सिर के कवचरुप अरिहंत भगवान को ओंकारपूर्वक नमस्कार हो । मुख पर श्रेष्ठ मुखवस्त्रिकारुप ऐसे सिद्ध भगवान को नमस्कार हो.....२

अतिशय अंग की रक्षा रुप ऐसे आचार्य भगवान को नमस्कार हो । दोनों हाथ में मजबूत आयुध (हथियार) रुप ऐसे उपाध्याय भगवान को नमस्कार हो.....३

दोनो चरण में सुंदर पादुकारुप ऐसे, लोक में रहे हुए सर्व साधुओं को नमस्कार हो । ये पांच नमस्कार इस भूमितल पर वज्रमय शिलारुप है....४

**सव्वपावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः**
**मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिरांगारखातिका....५**
**स्वाहांतं च पदं ज्ञेयं, पढमं होई मंगलम् ;**
**वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देहरक्षणे....६**
**महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रवनाशिनी;**
**परमेष्ठिपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः.....७**
**यश्चेवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठिपदैः सदा;**
**तस्य न स्याद्भयं व्याधि, राधिश्चापि कदाचन....८**

**-: शब्दार्थ :-**

सव्वपावप्पणासणो - सभी पाप का नाश करने वाला
वप्रो - किले रुप
वज्रमयो - वज्रमय
बहिः - बाहर के
मंगलाणं च सव्वेसिं - सर्व मंगलो की
खादिर - खेर के
अंगार - अंगारो की
खातिका - खाइरुप है
स्वाहांत - जिसके अंत में स्वाहा है
पदं - पद
ज्ञेयं - जानना
पढमं - प्रथम
होई - है
मंगलम् - मंगल
वप्रोपरि - किले के उपर
पिधानं - ढक्कन
देहरक्षणे - देहरक्षा में
महाप्रभावा - महा प्रभाववाली
रक्षा - रक्षा है
इयं - यह
क्षुद्रोपद्रव - क्षूद्र उपद्रवो को
नाशिनी - नाश करने वाली
परमेष्ठिपदोद्भूता - पंच परमेष्ठी के पदो में से उत्पन्न हुई
कथिता - कही है
पूर्वसूरिभि - पूर्वाचार्यो ने
यः - जो
चैव : - और इस तरह
कुरुते - करते हैं
परमेष्ठिपदेः - पंच परमेष्ठि के पदो से
सदा - हमेशा
तस्य - उन्हें
न स्यात - नहीं होते
भयं - भय (डर)
व्याधिः - रोग
आधि - मन की पीडा
चापि - और भी
कदाचन - कभी भी

**गाथार्थ :** सभी पापों का नाश करनेवाला नवकार मंत्र बाहर से चारों दिशाओ में वज्र के किले जैसा है, और सर्व मंगलो को रखने के लिये वह अंगारोकी खाई रुप है .....५

स्वाहा जिसके अंत में है, ऐसा ये पद जानना अर्थात नमोर्हदभ्यः स्वाहा यह पद प्रथम मंगलरुप होता है । यह पद शरीर की रक्षा करने में किले के उपर रहे हुए वज्रमय ढक्कन रुप है .....६

क्षुद्र उपद्रवों को नाश करनेवाली और महा प्रभावशाली यह रक्षा है, जिसे पूर्वाचार्यो ने पंचपरमेष्ठि के पदो में से उत्पन्न हुई कही है.....७

जो पुरुष इस तरह पंच परमेष्ठि के पदों से सदा रक्षा करता है, उस पुरुष को भय, व्याधि और आधि / मन की पीडा कभी भी होती नहीं ।

## श्री वज्रपंजर स्तोत्रनी विविध मुद्रायें

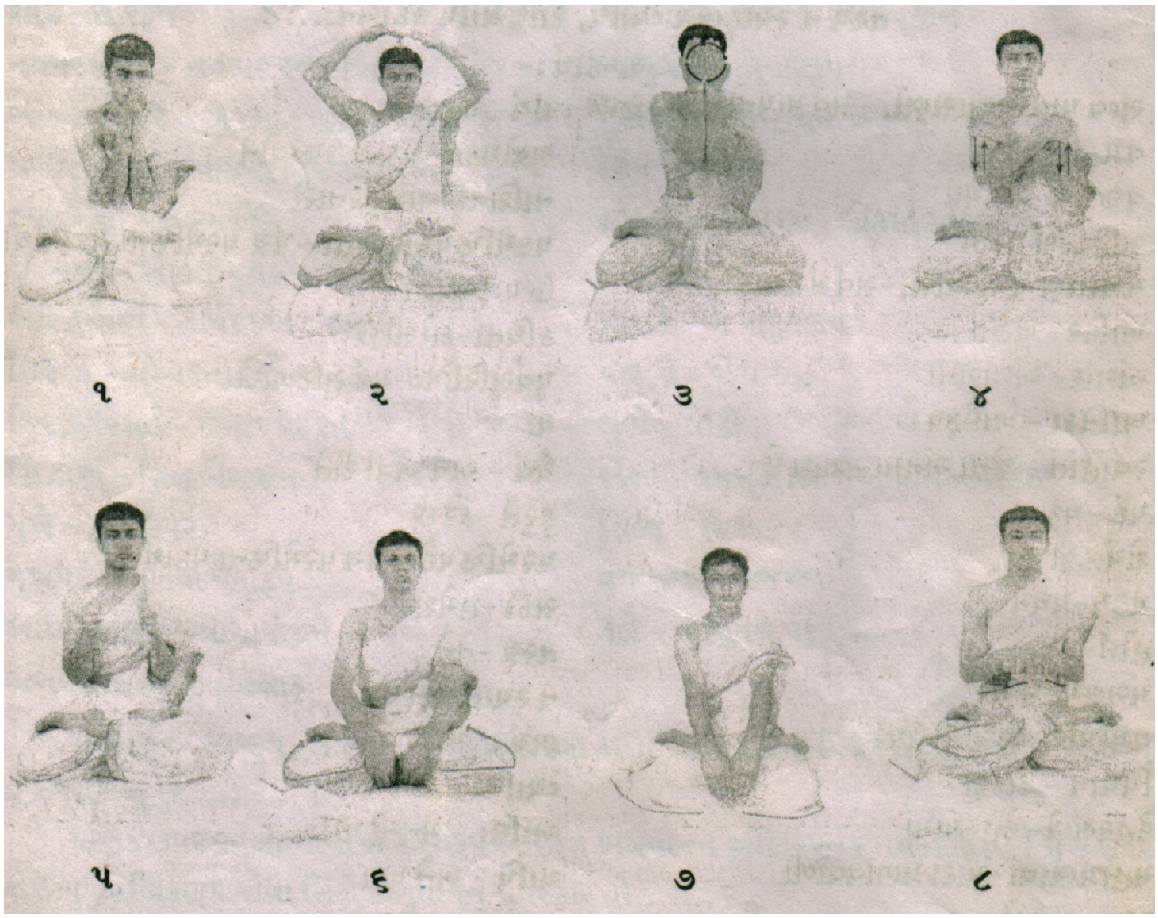

# श्रीगणधरवाद

## १) श्रीइन्द्रभूति गौतम

**आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.**

भारतभूमि के पूर्व विभाग के मगधदेश के समीप के गोब्बर गांव के गौतम गोत्रीय विप्रश्रेष्ठ वसुभूति नामक एक ब्राम्हण रहते थे, उनकी धर्मपत्नी पृथ्वीदेवी थी । पत्नी के साथ के संसार सुख के फलस्वरुप वसुभूति ब्राह्मण को तीन संताने प्राप्त हुई थी । तीनों ब्रम्हा,विष्णु एंव शंकर की त्रिपुटि की तरह शोभित हो रहे थे, त्रिबंधु के रुप में प्रसिद्धि पाये थे । क्रमश : पिता ने तीनों के नाम इस तरह रखे थे १) इंद्रभूति २) अग्निभूति ३) वायुभूति, गुण के अनुरुप नामों की स्थापना हुई थी, इन तीनों भाईयों में इंद्रभूति ज्येष्ठभ्राता - बडे भाई थे ।

वेद वेदांग के शास्त्रो का अध्ययन कराते पिताश्री वसुभूति अध्यापक के रुप में प्रसिद्धि पाये थे, पिता ने तीनों पुत्रो को पढा लिखाकर, वेद वेदांग में तैयार किया । गौतम का पूरा नाम - श्रीइंद्रभूति गौतम था, गौतम उनका गोत्र था ।

ब्राम्हणकुल विद्या अध्ययन हेतु प्रसिद्ध है । इंद्रभूति भी वेद,वेदांग, श्रुति-स्मृति आदि का गंभीर अभ्यास कर पिता के नक्शे कदम पर चल उन्होंने भी अध्यापक के व्यवसाय में प्रवेश किया । जीवन के गृहवास में पचास वर्षो तक रहकर वाद विवाद तथा अध्ययन, अध्यापन उन्होंने खूब किया, उनकी विद्वता की प्रसिद्धि दसों दिशाओं में फैली हुई थी, उन्हें वादविजेता की पदवी अनेक बार प्राप्त हो चुकी थी ।

मानो साक्षात सरस्वती के अवतार हो ऐसे इस महान पंडित का लगभग ५०० शिष्यों का विशाल परिवार था । वे प्रसिद्ध १४ वेद विद्याओं में पारंगत धुरंधर विद्वान थे । वेद, वेदांग, श्रुति,स्मृति, पुराण, निघंटु छन्द, इतिहास, न्याय, व्याकरण आदि अनेक शास्त्रो की उनकी विद्वता की प्रसिद्धि देश-विदेश में सर्वत्र फैली हुई थी ।

देशों में विविध पाठशालाओं तथा राज्याश्रय में होते अनेकवादो में इनकी विजय अनेक बार हुई थी परंतु ऐसे ख्यातिप्राप्त दिग्गज विद्वान इंद्रभूति के मन में वेद पढते वक्त श्लोक का अर्थ व्यवस्थित नहीं हुआ और उसमें से विपरित अर्थ की जो ध्वनि उनकी भूल के कारण निकली वो ही मन में घर कर गयी और आत्मा है या नहीं ? इस शंका के स्वरुप ''न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति'' आत्मा है ही नहीं ऐसी उनकी दृढ मान्यता हो गयी थी । एक बार ये इंद्रभूति अपने बंधुओं एवं अन्य समर्थ पंडितो के साथ सोमिल ब्राम्हण के यहां यज्ञ के लिये गये थे ।

### वीर प्रभु का आगमन

श्री वीर प्रभु को केवलज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ तब चौसंठ इंद्रो का सिंहासन कंपायमान हुआ । अवधिज्ञान का उपयोग करने पर प्रभु के केवलज्ञानदर्शन की बात जानकर सारे इंद्र देवो के परिवार के साथ वहां आ पहूंचे और जृंभिका गांव के नगर के बाहर समवसरण की रचना की, प्रभु ने वहां विराजमान होकर देशना दी, समवसरण में मनुष्य नहीं थे, देव एवं इंद्र होने से कोई व्रत लेने वाला नहीं होने से प्रभु की देशना निष्फळ गयी फिर प्रभु वहाँ से विहार कर अपापानगरी के महसेन उद्यान में पधारे ।

उसी समय सोमिल नामक ब्राम्हण ने यज्ञ करने हेतु उस समय के महान समर्थ ब्राम्हण पंडितो को वहाँ एकत्रित किया था ।

इसमें ग्यारह ब्राम्हण विद्वान एक-एक संदेह वाले थे फिर भी प्रत्येक स्वयं को सर्वज्ञ मानते होने के कारण सर्वज्ञपने में क्षति आयेगी इसलीये वो संशय एक दूसरे को पूछते भी नहीं थे । उन ग्यारह पंडितो का शिष्यों का परिवार चार हजार चार सौ का था, इसके अतिरिक्त अन्य भी उपाध्याय, शंकर, विष्णु, ईश्वर, शिवजी, जानी, गंगाधर, महीधर, भूधर, लक्ष्मीधर, पंड्या-विष्णु, मुकुंद, गोविंद, पुरुषोत्तम, नारायण दवे-श्रीपति, उमापति, विद्यापति, गणपति, जयदेव, बालकृष्ण, यदुराम, राम, रामाचार्य, राउल, मधुसूदन, नरसिंह, कमलाकर, सोमेश्वर, हरिशंकर, त्रिकम, जोशी-पूनो, रामजी, शिवराम, देवराम, गोविंदराम, रघुराम, उदिराम वगैरह अनेक पंडित इस यज्ञप्रसंग में आये थे ।

इस अवसर पर श्रमण भगवान श्रीमहावीर देव को वंदन करने के लिये आकाश में से देवो के समूह आने लगे, वो देखकर यज्ञ करने आये ब्राम्हण पंडित परस्पर कहने लगे की ओहो ! यज्ञ की महिमा कितनी ज्यादा महान है । इसमें साक्षात देव आ रहे है, देव यज्ञमंडप की बजाय समवसरण की ओर जाने लगे तब ब्राम्हणों का आनंद उड गया, ये देव, सर्वज्ञ को वंदन करने जा रहे है, ऐसा जनता के द्वारा जानने मिला । तब इंद्रभूति क्रोध से तमतमाकर बकने लगे, इस जगत में मैं ही सर्वज्ञ हूं, अन्य सर्वज्ञ हो ही नहीं सकते, दूसरे सर्वज्ञ हैं, ऐसा वचन कान में पीडा उत्पन्न करता है । मूर्खो को तो कोई भी बना सकता है, पर इसने तो देवो को अपनी ओर आकर्षित किया है, इसलीये यह कोई महाधूर्त लगता है, वरना तो यज्ञमंडप को और मुझ जैसे सर्वज्ञ को छोडकर ये देव वहां क्यों चले गये ? ये तो तीर्थजल को छोडकर जैसे कौअे, सरोवर को छोडकर जैसे मेंढक, चंदनरस को छोडकर जैसे मक्खियाँ, अच्छे वृक्षो को छोडकर जैसे ऊंट, खीर को छोडकर जैसे सूअर, अन्य चले जाय वैसे ही यज्ञ को छोडकर ये देव अन्यत्र जा रहे है, इससे समझ में आ रहा है की जैसा वो सर्वज्ञ होगा वैसे ये देव है, मुझसे इनके सर्वज्ञ के अभिमान को सहन किया जा सके ऐसा नहीं है । एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती, एक गुफा में दो केसरी सिंह भी नहीं रह सकते, आकाश में दो सूर्य भी पास में नहीं रह सकते वैसे ही मैं और वो दो सर्वज्ञ यहां नहीं रह सकते, इंद्रभूति इस तरह से विचार कर रहे थे तब प्रभु को वंदन करके वापस लौट रहे लोग वहां से गुजरे उन्हें मजाक में इंद्रभूति ने पूछा आपने उस सर्वज्ञ को देखा ? वो कैसे स्वरुपवाला और कैसा है ? लोगों ने कहा कि उनका वर्णन करने के लिये हम शक्तिमान नहीं है, परंतु आप तो स्वयं को सर्वज्ञ कहलवाते हो इसलीये इस बाबत में हमें क्यों पूछ रहे हो ? सर्वज्ञ तो स्वयं जान सकता है, यदि आप को पता नहीं है तो सर्वज्ञ का झूठा आडंबर करके जगत को क्यों ठग रहे हो ? हम जिस सर्वज्ञ के पास जाकर वंदन आदि कर आये उस सर्वज्ञ के गुणों को गिनने में हम समर्थ नहीं है, वैसे ही इस जगत में कोई समर्थ नहीं है । लोकमुख से ऐसा सुन कर इंद्रभूति को लगा की अपने आप को सर्वज्ञ मनवाने वाला यह कोई महान धूर्त है, प्रपंच का घर है यदि ऐसा न हो तो ये सारे लोग उसके गुणगान करने क्यों लग जाएं ? मैं एक क्षण भी सर्वज्ञ को सहन नहीं करुंगा, अंधकार को भगाने क्या सूर्य अपना पराक्रम नहीं बताता है ? क्या अग्नि हस्तस्पर्श को, सिंह केशराशि को पकडने पर एवं क्षत्रिय शत्रु के तिरस्कार को सहन करेगा क्या ? जिसने विद्वानों की सभा में अच्छे भले विद्वानों की बोलती बंद कर दी हो ऐसे मेरे आगे, मेरे ही घर में बहादूरी बतानेवाला यह कौन आया है ? जिस अग्नि ने बडे-बडे पर्वतो को जला दिया है , उसे लकडी के टुकडे को जलाने में क्या देर लगेगी ? जो पवन मोटे - मोटे हाथियों को उडा दे, उसे एक रुई की पोनी को उडाने में क्या देर लगेगी ? गौडदेश के पंडित मेरे भय से दूर देश में चले गये । गुर्जर विद्वान तो मेरे से भयभीत हो त्रासित हो उठे, मालवदेश के पंडितों की तो मेरे भय से मृत्यु हो गयी, तेलंगी पंडितो के मुख मेरे भय से तिल समान काले हो गये, लाट देश के विद्वान मेरे भय से कहां छुप गये उसकी खबर भी नहीं लगी, निपुण ऐसे द्राविड विद्वान तो मेरे भय से शरमाकर मुंह नीचा करके घूम रहे हैं । आज जगत में मेरे साथ वाद करने खडा रहे ऐसा कोई

रहा नहीं । इससे वादीयो का बडा दुष्काल पडा है, ऐसा लगता है । ऐसे में मेरे समक्ष अपने आप को सर्वज्ञ कहलवाने वाला यह तुच्छ प्राणी कितनी देर तक टिक सकेगा ? इस तरह से विचार करते और वादी को जीतने हेतु तैयार हो रहे ऐसे इंद्रभूति को उनके छोटे भाई अग्निभूति ने कहा की एक तुच्छ स्थिति के वादी को जीतने आप क्यों प्रयास कर रहे हो ? कमल को उखाडने ऐरावत हाथी को नहीं लाया जाता, मुझे अनुमति दिजिये तो मैं क्षणभर में उन्हें जीत आऊं । इंद्रभूति ने कहा की उस वादी को तो मेरा एक छोटा शिष्य भी जीत सके ऐसा है, परंतु वादी का नाम सुनकर मैं खुद ही रह नहीं पाता जैसे तिल को पीसते हुए कोई तिल रह जाय, अनाज को पीसते कोई दाना रह जाय, तृणो को उखेडते समय कोई तिनका रह जाय, अगस्त्य के द्वारा समुद्र पीते वक्त कोई छोटा पानी से भरा खड्डा रह जाये और छिलके उतारने पर कोई छिलकेवाला दाना रह जाय वैसे ही जगत के सारे वादीयों को जीतने में यह वादी रह गया लगता है । सर्वज्ञ के रुप में झूठा आडंबर करने वाले इस वादी को में जीते बिना नहीं रह सकता, यह एक नहीं जीता जाता तब तक जगत को जीता हुआ नहीं कहा जा सकता । सती स्त्री का एक बार शील खंडित हो जाय तो उसे सती नहीं कहा जाता है । मैंने हजारो वादीयों को जीता है और अब इस एक को नहीं जीतता तो जगत में प्राप्त किया हुआ मेरा यश चला जायेगा, अल्प भी शल्य शरीर में रह जाय तो वो प्राणों का हरण करने वाला साबित होता है, जहाज में एक भी छिद्र रह जाय तो वो जहाज को डूबा सकता है, आदि विचार करते इंद्रभूति ने शरीर पर बारह स्थानों पर तिलक किया, पितांबर पहनकर सोने की जनोई पहनी, फिर कितने ही शिष्य हाथ में पुस्तके ले रहे थे, कितने कमंडल उठा रहे थे, कितने ही दर्भ ग्रहण कर रहे थे ।ऐसे ऐसे शिष्य सरस्वती कंठाभरण ! वादीविजयलक्ष्मीशरण ! वादीमदगंजन ! वादीमुखभंजन ! वादीगोधूमघरट्ट ! मर्दितवादीभरट्ट ! वादीघट्टमुद्गर ! वादी कंसकहान ! वादीहरणहरे ! वादीज्वरधन्वंतरे ! वादीयूथमल्ल ! वादीहृदयशल्य ! वादीगणजीपक ! वादीशलभदीपक ! वादीचक्रचूडामणे ! पंडित शिरोमणे ! विजितानेकवाद ! सरस्वतीलब्धप्रसाद ! इत्यादी बिरुदावलियों से दिशाओं को भी गुंजा देते ऐसे पांच सौ शिष्यो से घिरे हुए इंद्रभूति श्री वीरप्रभु के पास जाते हुए सोचने लगे कि, अरे, इस दृष्ट पापी ने यह क्या किया ? इसने सर्वज्ञ के रुप में स्वयं को जाहिर कर मुझे क्रोधित किया है यह तो मेंढक काले सर्प को पादप्रहार करने तैयार हुआ है अथवा तो चूहा अपने दातों से बिल्ली के दांतो को तोडने दौड आया है, यह तो बैल अपने सींगो से ऐरावत हाथी को मारने तैयार हुआ है अथवा हाथी दांतो के द्वारा मेरुपर्वत को गिराने तैयार हुआ है । अरे, यह तो खरगोश केसरीसिंह की केशराशि काटने की तैयारी कर रहा है । मेरे समक्ष खुद का सर्वज्ञपना प्रसिद्ध करनेवाले ने मानो शेषनाग के मस्तक पर से मणि लेने की तैयारी की है, उसने पवन के सामने रहकर दावानल सुलगाया है, मैं अभी वहाँ जाकर उसकी बोलती बंद कर दूंगा, जब तक सूर्य उगता नहीं तब तक ही खद्योत या चन्द्र प्रकाश कर सकते है, जब तक केसरीसिंह की गर्जनायें कान तक नहीं पहूंचती तब तक की मदोन्मत हाथी, घोडे, हिरण वगैरह आनंद का अनुभव कर सकते हैं । मेरे भाग्य से ही मुझे ऐसा वादी प्राप्त हुआ है, उसके साथ वाद करके मेरी जीभ की खुजली को मैं आज दूर करुंगा । लक्षण शास्त्र में मैं निपुण हुं, साहित्य में मेरी मति अस्खलित है, तर्कशास्त्र में मुझे कोई लांघ सके ऐसा नहीं है, मैने कौन से शास्त्रों में परिश्रम नहीं किया है ? यम को मालवदेश कहाँ दूर है ? वचनसिद्ध को क्या सिद्ध नहीं है ? रसशास्त्र के जानकर से कौनसा रस अन्जाना होगा ? चक्रवर्ती से क्या अजेय होगा ? वज्र से न भेदा जा सके ऐसा क्या होगा ? महात्मा से न साधा जा सके ऐसा क्या होगा ? भूखे से न खाया जा सके ऐसा क्या होगा ? खलपुरुष से न बोलने योग्य ऐसा क्या होगा ? कल्पवृक्ष को न देने जैसा क्या होगा ? वैरागी को न तजने योग्य क्या होगा ? और मुझे न जीतने जैसा क्या है ? तो फिर मैं वहाँ जाऊं, उसका पराक्रम देखुं और उसे पराजित करुं, ऐसा करने से मैं त्रिलोक विजेता कहलाऊंगा । (क्रमंशः)

# (लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.

हम जहाँ रहते है वह है हमारा विश्व.....

यह विश्व कैसा है ? यह विश्व कितना विशाल होगा ? .....

इस विश्व में हमारा स्थान कहाँ है ?.....

इन सब प्रश्नों का सुंदर समाधान सर्वज्ञ भगवंतो ने सही रीत से किया है । इस विभाग में हम उसे समझने का प्रयास करेंगे ।

**नमिय जिणं सव्वन्नुं, जगपूज्जं जगगुरुं महावीरं ।**
**जंबुदीवपयत्थे, वुच्छं सुत्ता सपरहेऊ ।। १ ।।**

सर्वज्ञ.... विश्व वंदनीय....जगतगुरु ऐसे श्री महावीर जिनेश्वर को नमस्कार कर स्व और पर के कल्याण हेतु सूत्र के अनुसार जंबुद्वीप के पदार्थों के विषय में बतायेंगे ।

इस प्रथम गाथा में मंगलाचरण, विषय, प्रयोजन, संबंध और ग्रंथ पढ़ने के अधिकारी कौन इन बातों को बताया है ।

**१) मंगलाचरण :** श्री महावीर जिनेश्वर को नमस्कार कर चार अतिशयों से मंगलाचरण किया गया है ।

**१) अपायापगम्मतिशय :** (जिणं)जिनेश्वर प्रभु स्वार्थ-रागद्वेष से रहित थे । इसी कारण ऐसे भगवान जिस क्षेत्र में विचरण करते है वहाँ १२५ योजन तक किसी भी प्रकारके रोग न हो..... अकाल न पडे..... अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि न हो ।

**२) ज्ञानातिशय :** (सव्वनुं) प्रभु केवलज्ञानी.....सर्वज्ञ है.....

**३) पूजातिशय :** (जगपूज्जं) तिर्यंच, देव, मनुष्य आदि विश्व के सब जीवों द्वारा पूजा करने योग्य होते हैं ।

**४) वचनातिशय :** (जगगुरुं) प्रभु ने केवलज्ञान से जगत के जिन पदार्थों को जाना है, वे पदार्थ वैसे ही जगत के उपकार के लिये बताये हैं ।

**२) विषय :** जंबुद्वीप के शाश्वत पदार्थोंका वर्णन ।

**३) प्रयोजन :** स्व पर के बोध के लिये एवं परंपरा से मोक्ष प्राप्ति के हेतु ।

**४) संबंध :** प्रभु के वाणी स्वरुप सुत्र से एवं गुरुपंरपरा से प्राप्त ज्ञान द्वारा रचना हुई है ।

**५) अधिकारी :** सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले सब भव्यात्माएं यह ग्रंथ पढ़ने के अधिकारी है ।

# चौदह राजलोक

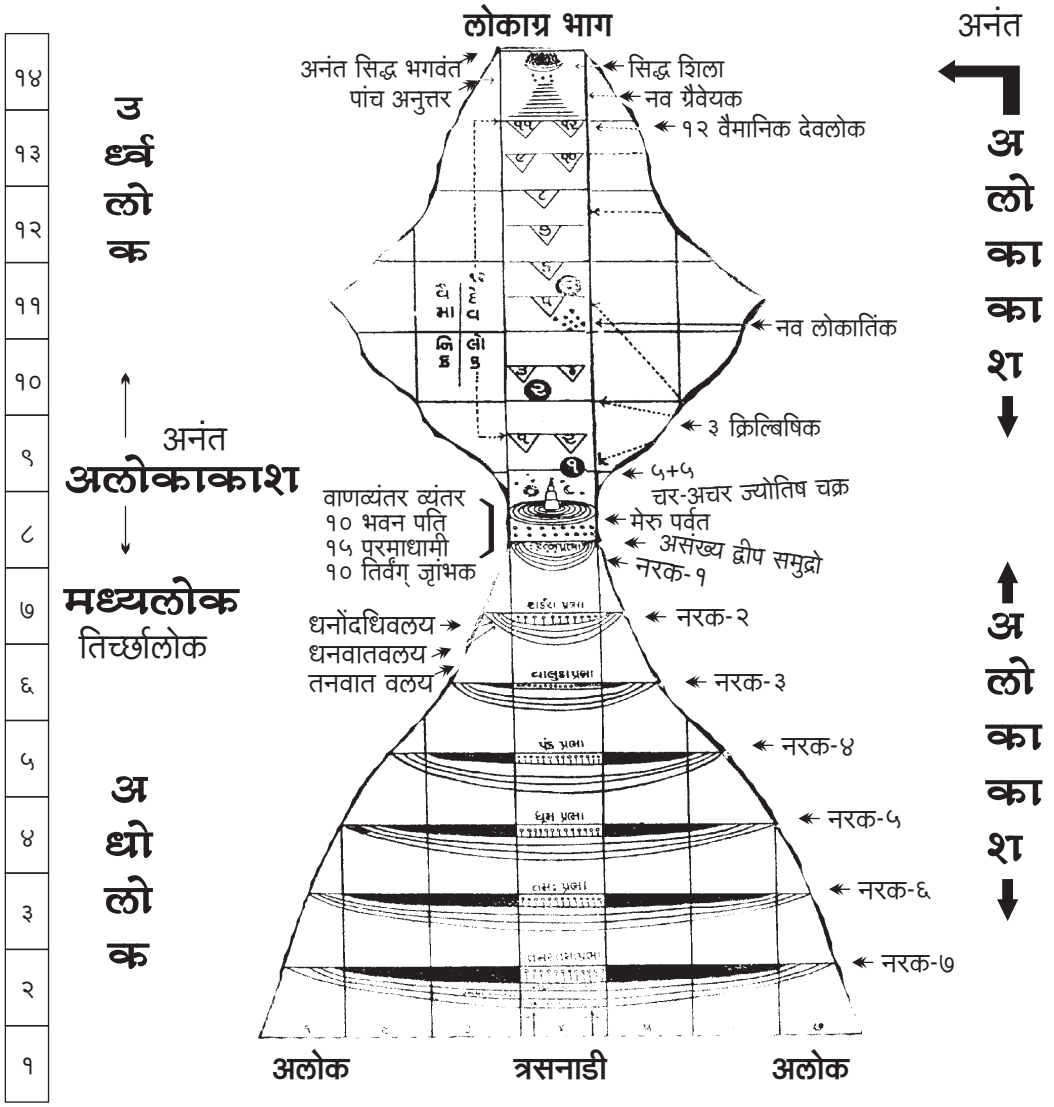


इस जंबुद्वीप के स्वरुप को जानने से पहले हम संक्षिप्त में इस विश्व के स्वरुप को जानने का प्रयत्न करेंगे।

लोक शब्द 'लोक्' धातु पर से बना है। ''जो देखा जाता है वह लोक'' लोक याने पंचास्तिकाय का समुदाय. पंचास्तिकाय में इन पाँच अस्तिकाय का समावेश होता है.... (१) धर्मास्तिकाय २) अधर्मास्तिकाय ३) आकाशास्तिकाय ४) पुद्गलास्तिकाय ५) जीवास्तिकाय.

**धर्मादीनां वृत्तिर्द्रव्याणां भवनि यत्र तत् क्षेत्रम् ।**
**तैः द्रव्यै सह लोकस्तद्विपरीतं ह्यलोकाख्यम् ।।**

जिस में धर्मास्तिकाय आदि पाँच अस्तिकाय द्रव्य रहे हुए है उस क्षेत्रको **लोक** कहते है । जहाँ पंचास्तिकाय का अभाव है वह **अलोक** है ।

अलोक अनंत आकाशास्तिकायरुप है । अलोक के मध्य में लोक रहा हुआ है । उत्पाद-व्यय-ध्रोव्य इस त्रिगुणात्मक छः द्रव्योंका जहाँ अवस्थान है वह लोक है । संपूर्ण लोक के १४ विभाग करने में आये है । प्रत्येक विभाग रज्जु (राज) कहा जाता है । इस तरह १४ राजप्रमाण लोक है ।

इस लोक के तीन विभाग है १) उर्ध्वलोक २) मध्यलोक ३) अधोलोक

१) उर्ध्वलोक :- उर्ध्वभाग में रहे हुए भाग को उर्ध्वलोक अथवा स्वर्गलोक कहते है । खडे किये हुए मृदंग के आकार जैसा सात रज्जु से कुछ न्यून (कम) है । यहाँ पर पुण्यशाली दिव्य वैभवों की अनुभूति करने वाले देव निवास करते हैं । उर्ध्वलोक में १२ देवलोक, ९ लोकांतिक, तीन किल्बीषिया, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमानवासी वैसे ही सिध्दशीला और सिद्ध पद को पायी हुई आत्माओं का समावेश होता है ।

२) मध्य में रहे होने से और मध्यम परिणामवाले द्रव्य का संभव होने से वह मध्यलोक अथवा तिर्च्छालोक कहलाता है । यह मध्यलोक चौरस रुचक से ९०० योजन उपर और ९०० योजन नीचे ऐसे कुल १८०० योजन प्रमाण है । झालर के आकार के इस लोक में व्यंतर, मनुष्य, तिर्यंच, समुद्र, द्वीप और ज्योतीषचक्र का समावेश होता है ।

३) अधोलोक : अधः याने नीचे । इस क्षेत्र का स्थान नीचे होने से अधोलोक कहलाता है । उसे पाताल लोक भी कहते है । अधः का अर्थ हलका, खराब ऐसा भी होता है । जहाँ के पुद्गलों के परिणाम हलके होते है अतः उसे अधोलोक भी कहते है । अधोलोक कुंभा के आकार का है । यहाँ भवनपति देव, परमाधामी देव और नारक बसते है ।

## तिर्च्छालोक

तिर्च्छालोक, मर्त्यलोक..... मध्यलोक आदि अनेक नामों से पहचाना जाता है । तिर्च्छालोक में असंख्याता द्वीप-समुद्र आये हुए हैं । तिर्च्छालोक के मध्य भाग में एक लाख योजन प्रमाणवाला **जंबुद्वीप** है । उसके आजुबाजु वलया कार **लवण समुद्र** है, उसके वर्तुलाकार **घातकीखंड** द्वीप है । उसके चारो और वलयाकार **कालोदधि** समुद्र है । उसके चारों ओर **पुष्करावरद्वीप** और **पुष्करावर समुद्र** है । इस तरह क्रमशः असंख्य द्वीप-समुद्र है और वे पूर्व पूर्व से दुगुने विस्तारवाले है ।

मनुष्य का जन्म-मरण मनुष्य क्षेत्र में याने ढाई द्वीप में ही होता है । ढाई द्वीप में जंबुद्वीप, घातकीखंड और अर्धपुष्करवर द्वीप और लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्र रुप ४५ लाख योजन लंबा चौडा विस्तारवाला मनुष्यक्षेत्र है ।

इसमें ५ भरत, ५ ऐरावत और ५ महाविदेह कुल मिलाकर १५ कर्मभूमियाँ, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक, ५ हैमवंत, ५ हैरण्यवंत, ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु ये ३० अकर्मभूमियाँ और ५६ अंतरद्वीप मिलाकर १०१ क्षेत्र में प्रायः मनुष्यों का जन्म मरण हो सकता है ।

तिर्यकलोक की यह प्राथमिक जानकारी मिलाने के बाद अब हम मध्य में रहे हुए जंबुद्वीप को विशेषतः जानने का प्रयत्न करेंगे ।

**खंडा जोयणवास, पव्वय कूडा य तित्थ सेढीओ ।**
**विजय-दह सलिलाओ, पिंडेसिं होई संघयणी ।।**

खंड, योजन, वास (क्षेत्र), पर्वत, कूट (शिखर) तीर्थ, श्रेणियाँ, विजय, द्रह, (सरोवर) और नदियाँ इन सबका समूह-पिंड अथवा संग्रह याने 'संग्रहणी' है ।

जंबुद्वीप में अनेकानेक विविध प्रकार के पदार्थ रहे हुए है । इन सब पदार्थों में भौगोलिक दृष्टि से मुख्यतः दस पदार्थ है । इन मुख्य दस द्वारों से इन दस पदार्थों का विशेष स्वरुप बताया गया है । इन दस पदार्थों के सामान्य अर्थ जानने का प्रयत्न करेंगे ।

**१) खंड :** संपूर्ण जंबूद्वीप में भरत या ऐरावत क्षेत्र के चौडाई (क्षेत्रफल) जितने कितने खंड हो सकते है, इसकी जानकारी दी है ।

**२) योजन :** जंबूद्वीप का व्यास उसकी परिधि और क्षेत्रफल की गिनती यहाँ की गई है ।

**३) वास-वर्ष-क्षेत्र :** मनुष्यों के रहने के स्थान वह वास-वर्ष अथवा क्षेत्र के नाम से पहचाने जाते हैं । जंबूद्वीप के ऐसे क्षेत्र कहाँ है, कितने है, इसका परिचय कराने में आया है ।

**४) पर्वत :** जंबूद्वीप में पर्वत कहाँ कहाँ है ? कितने है ? उनकी संख्यादि बताई है ।

**५) शिखर :** जंबूद्वीपके पर्वत के शिखर और भूमिकूटों की संख्या का परिचय कराया गया है ।

**६) तीर्थ :** जंबूद्वीप के समुद्रो में उतरने के बडे उतार स्थान तीर्थ कहलाते हैं । उनकी संख्या का विचार किया गया है ।

**७) श्रेणी :** वैताढ्य पर्वतों पर विद्याधरों के नगर एवं आभियोगिक देवों के भवनों की श्रेणियाँ है उनकी संख्यादि की विचारणा की गई है ।

**८) विजय :** चक्रवर्तीद्वारा जितने योग्य क्षेत्र विजय कहलाते है, उनका परिचय कराया गया है ।

**९) द्रह :** द्रह याने छोटे सरोवर, कुंड, मुख्य कुंडों की गिनती की गई है ।

**१०) नदीयाँ :** जंबूद्वीप की बडी नदीयाँ और उन्हें मिलने वाली अन्य नदीयों की विचारण की गई है ।

## तिर्च्छालोक (असंख्य द्वीप-समुद्र)

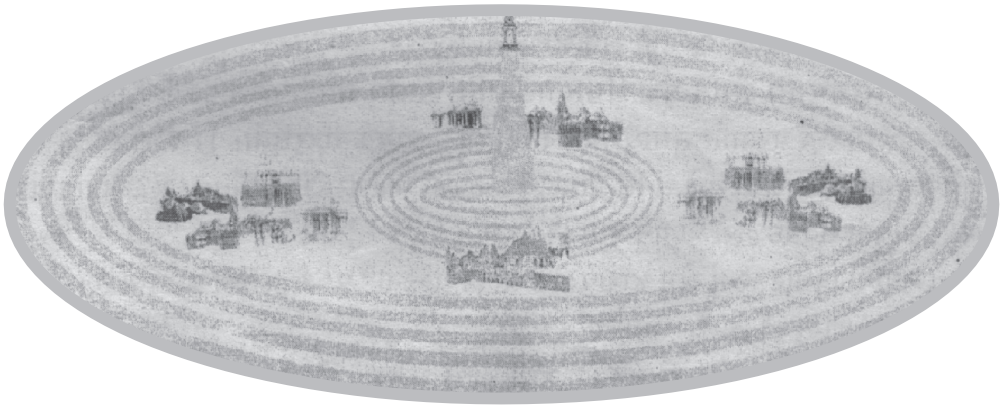

# श्रावक - जीवन

श्रावक कुल में जन्म लेने से हम सब श्रावक तो कहलाते है पर श्रावक शब्द का सही अर्थ क्या है ? आईये हम श्रावक शब्द के अर्थ को समझने का प्रयत्न करें....

**श्रवंति यस्य पापानि । पूर्वबध्दान्यनेकशः ।।**
**आवृत्तश्च व्रतैनित्यं । सोऽभिधीयते ।।१।।**

पूर्व भवों में बाँधे हुए विविध प्रकार के पापों को श्रवता है (कम करता) एवं सदा व्रत नियमों से परिवृत रहता है वह 'श्रावक' कहा जाता है ।

अन्य तरीके से **'श्रावक'** का अर्थ बताते हुए कहते है-

**सम्मतंदंसणाई । पइदी अहंजई जणासुणेइअ ।**
**समायारी परमं । जो खलु तं सावगं बिंति ।।२।।**

सम्यकत्व, व्रत, पच्चक्खाण प्रतिदिन करता रहे और साधु द्वारा उत्कृष्ट समाचारी सुने वह श्रावक कहलाता है । दुसरे रीत से इस ''श्रावक'' शब्द का अर्थ बताते हुए कहते है -

**श्रद्धालुता श्राति पदार्थचिंतनाद्धनानि, पात्रेषु वपत्यनारतं ।।**
**किरत्य पुण्यानि सुसाधुसेवनादतोपि तं श्रावकमाहुरुत्तमाः ।।३।।**

नवतत्वादि पर श्रद्धा रखे, सिद्धांतादि का श्रवण करे, आत्मस्वरुप का चिंतन करें, सुपात्र में धन वापरे, साधुसेवा द्वारा पुण्य प्राप्त करें वह उत्तम श्रावक कहलाता है ।

इस सब का विचार करने पर ऐसा विदित होता है की श्रावक शब्द का **''श्र''** श्रद्धा एवं श्रुतश्रवणको (शास्त्र के सिद्धान्त सुनने) सूचित करता है ।

श्रावक शब्द का **''व''** विवेक को सूचित करता है । जिससे श्रावक, क्या करने योग्य है और क्या त्यागने योग्य है यह जान सके, उसका निर्णय कर सकता है ।

श्रावक शब्द का **''क''** क्रिया सूचित करता है । यह क्रिया पाप का नाश करनेवाली और पुण्य का उपार्जन करनेवाली होती है ।

अतः श्रावक-श्रद्धावंत, विवेकवंत और क्रियावंत होता है, ऐसा निर्णय होता है ।

## श्रावक के प्रकार

**नामाई चउभेओ, सद्भाभावेणइथ्थ अहिगारो**
**तिविहो अ भावसद्भो, दंसण वय उत्तरगुणे हिं ।।४।।**

श्रावक के चार प्रकार है - १) नाम श्रावक २) स्थापना श्रावक ३) द्रव्य श्रावक ४) भाव श्रावक
भाव श्रावक के दर्शन श्रावक, व्रत श्रावक, एवं उत्तरगुण श्रावक ऐसे तीन भेद है ।

**१) नाम श्रावक :-** नाम के विपरित गुण हो अथवा नामानुसार न हो जैसे नाम धनपति पर निर्धन हो, नाम अमरचंद पर उसकी स्मशानयात्रा निकलती हो, जैसे अंधा हो पर नाम नयनसुख हो वैसे ही यहाँ पर श्रावक हो पर श्रावक योग्य गुण न हो, तात्पर्य नामधारी श्रावक हो ।

**२) स्थापना श्रावक :-** किसी अनेक सत्कृत्य करनेवाले गुणवान श्रावक की काष्ट या पाषाण की प्रतिमा बनायी हो अथवा उसका फोटो हो उसे स्थापना श्रावक कहते है ।

**३) द्रव्य श्रावक :-** श्रावक के स्वरुप को समझे बिना, उपयोग शून्यता से बाह्यरुप से श्रावक के आचारों का पालन करता हो वह श्रावक द्रव्य श्रावक कहलाता है । उसकी आराधना कर्मनिर्जरा के लिये न होकर कर्मबंधन के लिये होती है ।

**४) भाव श्रावक :-** श्रावक के स्वरुप को समझा हुआ हो, उपयोगपूर्वक हर क्रिया करता हो, उसकी छोटी भी आराधना कर्म निर्जरा एवं पुण्य के लिये होती है ।

इस भाव श्रावक के तीन भेद है -

**अ) दर्शन श्रावक :-** परमात्मा के उपर, परमात्मा के बताये हुए शास्त्र, सिद्धांत पर अतुट श्रद्धायुक्त समकितधारी श्रावक का इसमें समावेश होता है । यह श्रावक चौथे गुणस्थानक में होता है, उसके जीवन में व्रत नियम नहीं होते, श्रेणिक राजा एव कृष्ण राजा का इस दर्शन श्रावक में सामवेश होता है ।

ब) व्रत श्रावक :- समकित सहित पांच अणुवतों को (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह) धारण करनेवाला व्रत श्रावक कहलाया जाता है । सुंदर सेठ का समावेश व्रत श्रावक में होता है ।

क) उत्तरगुण श्रावक :- सम्यक्त्वसहित पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, (दिशाव्रत, भोगोपभोग व्रत, अनर्थदंड व्रत) और चार शिक्षाव्रत (सामायिक व्रत, देशावगासिक व्रत, पौषध व्रत, अतिथिसंविभाग व्रत) ऐसे कुल मिलाकर श्रावक के बारह व्रतों को धारण करनेवाले ''उत्तरगुणश्रावक'' कहलाते है । आनंद, कामदेव श्रावकोंका समावेश उत्तरगुण श्रावक में होता है ।

स्थानांग सूत्र में श्रावक के चार प्रकार बताते हुए कहा है -

**चउव्विहा समणोवासगा पन्नता तं जहा -**

**१) अम्मापिइसमाणे २) भायसमाणे ३) मित्तसमाणे ४) सव्वतिसमाणे**

**अर्थ :-** चारप्रकार के श्रमणोपासक कहे है -

१) मातापिता समान २) भाई के समान ३) मित्र समान ४) शोक्य समान

साधुओं की सेवा भक्ति करे, साधु का प्रमादाचरण देखकर स्नेहरहित न हो और साधुओं पर सदा हितवत्सल हो वे **''माता पिता समान''** श्रावक जानना ।

साधु का विनय वैय्यावच्च करने में अनादर हो पर हृदय में स्नेहशील हो और कष्ट के समय सचमुच सहकारी बनता हो ऐसे श्रावक को **''भाई समान श्रावक''** कहते है ।

साधु पर प्रीति रखे, साधु अपमान करे अथवा बिना पूछे काम करे तो उनसे रुठता जरुर है, पर अपने सगे स्नेहियों से भी उन्हें ज्यादा माने उसे **''मित्र समान श्रावक''** कहते हैं ।

स्वयं अभिमानी हो, साधु के छिद्र देखते रहते है और जरा भी दोष दिखाई दें तो समाज में साधु की निंदा करें, साधु को तृण समान माने वह **''शोक्य समान''** श्रावक समझना ।

प्रकारान्तर से श्रावक के चार प्रकार बताते है -

**चउव्विहा समणोवासगा पन्नता , तं जहा -**

**१) आयंससमाणे २) पडागसमाणे ३) थाणुसमाणे ४) खरंय्य समाणे**

चार प्रकार के श्रमणोपासक (श्रावक) बताये है -

१) दर्पण समान २) पताका समान ३) थाणुं समान ४) खरंटक समान

गुरु ने देशना में सूत्र-अर्थ आदि जो कहा हो वह बहुमानपूर्वक हृदय में धारण करे, गुरु के लिये स्वच्छ हृदय रखें वह श्रावक जैन शासनमें **''दर्पण समान''** कहलाता है ।

पवन द्वारा जैसे ध्वजा लहराती है, वैसे गुरु की देशना सुनते हुए जिसका चित्त स्थिर रहता नहीं और गुरु के वचनों का निर्णय न कर सकता हो, उसे **''पताका समान श्रावक''** कहा जाता है ।

गीतार्थ गुरु के बहुत समझाने के बाद भी जो अपने कदाग्रह को न छोडे, गीतार्थ की बात न समझे, न स्वीकारे वह श्रावक **''थाणुं के समान''** (खीले के समान) जानना ।

गीतार्थ गुरु सच्चा उपदेश दे रहे हो, फिर भी उसे न स्वीकारे और इसके विपरीत सद्गुरु को दुर्वचन रुप कांटे भोंके, गुरु उन्मार्ग दर्शक है, निन्हव है, मूर्ख हैं, ऐसे वचन कहे उसे **''खरंटक समान''** (कांटे जैसा) श्रावक कहा है ।

## श्रावक के कृत्य

श्रावक का जीवन किस प्रकार का होना चाहिये, जिससे संसार में रहकर भी पापों से कम लिप्त हो और पुण्य के भंडार को भरपूर करता रहे और पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा करे, इस हेतु छोटी से छोटी क्रिया बडी गंभीरता से बतायी है । परमात्मा महावीरस्वामी को एक बार गौतमस्वामी ने पूछा -

**कहं चरे कहं चिट्ठे, कहं आसे, कहं सये ।**
**कहं भुंजंतो, भासंतो, पाव कम्मं न बंधई ।।**

प्रभु कैसे चलुं, कैसे उंठू, कैसे बैठूं, कैसे सोउं, कैसे खाऊं, कैसे बोलुं, जिससे पाप कर्म न बांधा जायें ?

एक ही शब्द में जवाब देते हुए परमात्माने कहा -

**जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयं आसे, जयं सये ।**
**जयं भुंजंतो, भासंतो, पाव कम्म न बंधई ।।**

सब क्रियाएं यदि जयणापूर्वक जी जायें तो पाप का बंध होता नहीं । जयणा याने यतना, वह श्रावक जीवन की माता है ।

हमारे जीवन की पाप परंपरा का मूल इस जयणा की न्यूनता में है -

श्रावक जब तक यह जयणा जानते नहीं, पहचानते नहीं स्वीकारते नहीं तब तक धर्म क्रिया करते हुए भी सच्ची सिद्धि को पाता नहीं है । आईये हम श्राद्धविधि में बताये हुए श्रावक जीवन को जाने, माने, स्वीकारे और सच्चे भावश्रावक बनने का पुरुषार्थ करें, सच्चे श्रावक बने ।

प.पू. रत्नशेखरसूरिश्वरजी म.सा. **''श्राद्धविधि''** ग्रंथ में छःद्वार से संपूर्ण श्रावक जीवन का रहस्य बताते है । ये छःद्वार इस तरह है -

१) दिन कृत्य २) रात्रि कृत्य ३) पर्व कृत्य ४) चातुर्मासिक कृत्य ५) वर्ष कृत्य ६) जन्म कृत्य

दिन कृत्य में श्रावक अपने जीवन में प्रातः उठकर शाम तक क्या क्या कृत्य करना है, किस तरह करना है, एवं वे करने से क्या लाभ होता है, इसका सुंदर,सरल भाषा में विस्तार से वर्णन किया है ।

रात्रिकृत्य में श्रावक के निद्रा विधि एवं रात को करने योग्य क्रियाओं का विवेचन है ।

श्रावक योग्य क्रियाओं में लीन बना हुआ श्रावक पर्व तिथि पर कैसी विशिष्ट आराधना करे, पुण्य के भंडार कैसे भरपूर भरे इसकी विचारणा इस द्वार में की गई है ।

चातुर्मास साधना का काल है, इसमे जयणा की आराधना और तप की साधना आदि उपासनाओं का मार्गदर्शन चातुर्मासिक कृत्यों में किया गया है।

श्रावक के कई कर्तव्य ऐसे है जो साल में एक बार जरुर आचरण में लाना चाहिये, इनका अद्भूत वर्णन श्रीमद् आचार्य भगवंत ने ''वर्ष कृत्य'' में और श्रावक कुल में लेने से श्रावक जन्म योग्य करने योग्य कुलाचार की बात ''जन्मकृत्य'' में बतायी है।

आइये अब हम श्रावक के कर्तव्यों को धीरे धीरे समझने, स्वीकारने और आचरण में लाने के लिये प्रयत्नशील बनें।

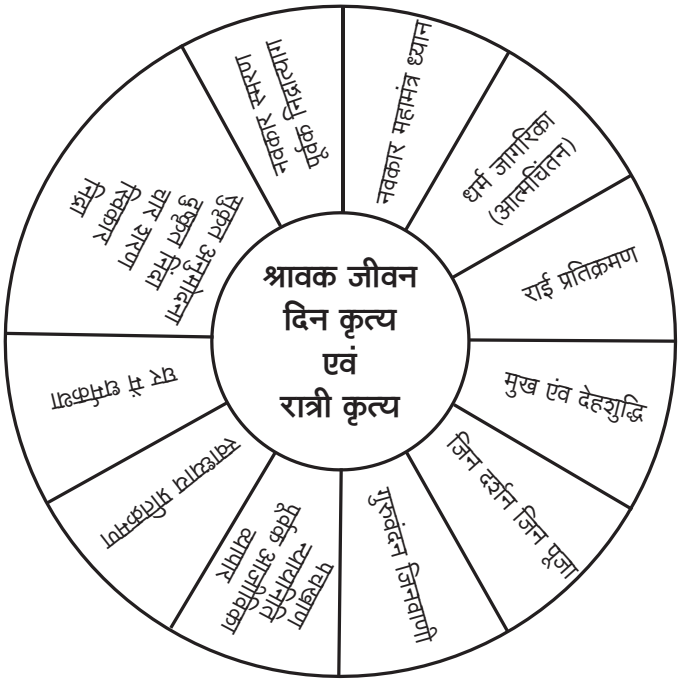

# कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

हम जिस विश्व में रहते है, उस विस्व का अवलोकन करो, क्या दिखाई देता है तुम्हे ? यह विश्व अनेकानेक चित्र-विचित्र व्यक्ति और वस्तुओं का भंडार है.....

कोई सुखी है.....कोई दुःखी है.....

कोई राजा है.....कोई रंक है.....

कोई महल में है.....कोई जेल में है.....

कोई रुपवान है ..... कोई कुरुप है.....

कोई निरोगी है..... कोई रोग से पिडित है.....

ज्यादा क्या कहें ? एक ही माता पिता के दो संतानो में भी समानता नहीं है । एक बुद्धिशाली है, तो एक मंद बुद्धि का है । एक समृद्ध है तो एक दरिद्रता का अवतार है ।एक आस्तिक है तो एक नास्तिक है । यह और ऐसी अनेक बातों की विचित्रता का जवाब हमारे पास नहीं । विश्व के महापुरुषों ने विश्व की ऐसी विचित्रता के रहस्य को समझने का पुरुषार्थ किया है । हिंदुस्तान के चार्वाक दर्शन के सिवा अन्य सभी दर्शनो ने विश्व की सभी घटनाओं के पीछे कार्य कर रही अदृश्य कर्मसत्ता का स्वीकार किया है ।

न्याय और वैशेषिक दर्शनकार कर्म को धर्म-अधर्म रुप मानते हैं ।

वेदांत दर्शनकार कर्म को **''अविद्या''** रुप मानते हैं ।

सांख्य दर्शनकार कर्म को **''प्रकृति''** रुप मानते है.....

बौद्ध दर्शनकार कर्म को **''वासना''** रुप मानते है.....

जैन दर्शन में कर्म को किस प्रकार का बताया है ? जानना है ?

आइये ! जानने का प्रयत्न करें.....

## ''कर्म'' क्या है ?

जैन दर्शन में षडद्रव्यमय जगत कहा गया हैं । विश्व में छः द्रव्य हैं, जिसमें एक पुद्गलस्तिकाय है । पुद्गलास्तिकाय वर्ण, गंध, रस और स्पर्श सहित है, और उसके स्कंध, देश, प्रदेश, परमाणु ऐसे चार भेद हैं । समान प्रदेशों के बने स्कंध समुह को वर्गणा कहा जाता है । ऐसी अनंतानंत वर्गणाएं इस विश्व में रही हई हैं । इन अनंतानंत वर्गणाओं में केवल आठ वर्गणाएं ऐसी है, जिस जीव ग्रहण कर सकता है । नीचे बताई गई आठ वर्गणाएं क्रमसर ज्यादा से ज्यादा प्रदेशों की बनी है और वे ज्यादा से ज्यादा सूक्ष्म हैं ।

१) मनुष्य तथा तिर्यंचो के औदारिक शरीर निर्माण में उपयोगी हो ऐसे पुदगलों को **औदारिक वर्गणा** कहा जाता है ।

२) देव - मनुष्य या तिर्यंच के वैक्रिय शरीर निर्माण में उपयोगी हो ऐसे पुद्गलों को **वैक्रिय वर्गणा** कहा जाता है ।

३) आहारक लब्धिधारी १४ पूर्वधारी मुनिओं द्वारा निर्माण किये जाते आहारक शरीर रचना में उपयोगी हों ऐसे पुद्गलो को **आहारक वर्गणा** कहा जाता है ।

४) अपने द्वारा ग्रहण किये गये आहार की पाचन क्रिया करे ऐसे तेजस शरीर रचना में उपयोगी पुद्गलो को **तेजस वर्गणा** कहते हैं ।

५) जीवों को भाषा के उच्चारण में उपयोगी हो ऐसे पुद्गल **भाषा वर्गणा** कहे जाते है ।

६) जीवों को श्वासोश्वास लेने छोडने में उपयोगी हो ऐसे पुद्गल को **श्वासोश्वास वर्गणा** कहा जाता है ।

७) जीवों को चिंतन-मनन में उपयोगी हो ऐसे पुद्गल **मनो वर्गणा** कहलाते है ।

८) आत्मा के साथ कर्मरुप जुडने बंधने में उपयोगी हो ऐसे पुद्गलों को **कार्मण वर्गणा** कहते हैं ।

प्रथम चार वर्गणा के स्कंधो के समुह अपनी आंखो से देख सके ऐसे दृश्य होने से बादर परिणामी कहलाते हैं ।

आखरी चार वर्गणा के स्कंधो के समुह अपनी आंखो से देख सकते नहीं, वे अदृश्य होने से सूक्ष्म परिणामी कहलाते हैं ।

ये आठों ही वर्गणाएं चौदह राजलोक में ठूंस ठूंस कर भरी हुई हैं...पुद्गल स्वरुप अजीव है.... वर्ण गंध रस स्पर्श सहित है ।

कार्मण वर्गणा अत्यंत सूक्ष्म-अदृश्य-सर्वत्र है । जब आत्मा के साथ जुडती है तब कर्मरुप बनती है ।

## कार्मण वर्गणा कर्म कैसे बने ?

हमारे वस्त्र पानी से गीले हों या तेल की चिकनाई वाले हो ऐसे वातावरण में धूल का बवंडर उडे तो हवा में रही हई धूल की महीन रज हमारे वस्त्र से चिपक कर वस्त्र को मलीन बना देवे उसी प्रकार आत्मा में राग,द्वेष के परिणाम की आर्द्रता या चिकनाई हो तो वातावरण में रही हुई कार्मण - वर्गणा आत्मा पर चिपक कर आत्मा को मलीन बना देवे, कार्मण वर्गणा का आत्मा की तरफ खिंचना और आत्मा से जुडना यह कर्मबंध है । आत्मा के साथ जुडी हुई कर्मरज (कार्मण वर्गणा) कर्म बनती हैं । अब उसे कर्म कहा जाता है ।

कर्म की सामान्य जानकारी पाने के पश्चात अब हम **''कर्म-विपाक''** नाम का श्रीमद् देवेन्द्रसूरि रचित प्रथम कर्मग्रंथ को जानने का प्रयत्न गाथा अर्थ और विवेचन के द्वारा करेंगे ।

**सिरि- वीर - जिणं - वंदिअ, कम्म विवागं समासओ वुच्छं ।**
**कीरई - जीएण हेऊहिं, जेणं तो भन्नए ''कम्मं '' ।।१।।**

**गाथार्थ :** श्री 'महावीर' जिनेश्वर परमात्मा को वंदन करके संक्षिप्त - थोडे कथन में **'' कर्म-विपाक''** नामक प्रथम कर्मग्रंथ को कहता हूँ । जीव के द्वारा जिन हेतुओं (मिथ्यात्व, असंयम आदि) से जो क्रिया की जाती है उसे कर्म कहा जाता है ।

परम उपकारी, चरम तीर्थपति, शासनपति श्री महावीर स्वामी को वंदन करके ग्रंथ का मंगलाचरण करते हैं । किसी भी कार्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है, जिससे कार्य निर्विध्न पूर्ण हो । मंगलाचरण करके स्वयं ग्रंथ में कौनसा विषय लेने वाले है वह बताते हुए कहते हैं कि ''संक्षेप मे कर्म, विपाक कहूंगा । कर्म याने क्या ? अब हम जानेंगे उसके विपाक याने फल । कर्म कैसे कैसे अलग अलग प्रकार के है और वे कैसा कैसा फल देते है ? उसका वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है । इसिलिये यह ग्रंथ **''कर्म-विपाक''** नाम से पहचाना जाता है । यह पहला कर्मग्रंथ है ।

गाथा के आधे भाग में कर्म की व्याख्या बताते हुए कहते हैं - **हेतुओं से आत्मा के द्वारा** जो किया जाता है वह **कर्म कहलाता है** ।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है हेतुओ से याने क्या ?

कर्मबंध के हेतु - कारण है, आत्मा किन किन हेतुओं से या कारणों से कर्म बांधती है ? यह बताते हुए मुख्य

चार कारण बताये हैं -

१) मिथ्यात्व २) अविरति ३) कषाय और ४) योग

योग याने मन,वचन, काया की प्रवृत्ति ।

इन चार प्रकार की आत्म प्रवृति से सतत कर्मबंध होता रहता है । कर्मबंध को अटकाने के लिये इस प्रकार की प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है ।

**पयइ-ठि-रस-पएसा, तं चउहा मोअगस्स दिट्ठंता ।**
**मूल पगईट्ठ, पगइ अडवन्न सय भेयं ।।२।।**

**गाथार्थ :** कोई भी कर्म प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश रुप चार प्रकार से बंधता है, जिसे मोदक के दृष्टांत से समझना चाहिये । उसके मूल भेद आठ एवं उत्तरभेद एक सौ अठ्ठावन है ।।२।।

आत्मा जब जब क्रोध,मान,असत्य, चोरी वगैरह भाव वाला बनता है, तब वह कार्मण वर्गणा को स्वयं की तरफ खेंचता है । तब कार्मण वर्गणा आत्मा के साथ क्षीर-नीर या लोहाग्नि की तरह एक मेक होकर कर्म स्वरुप चिपकती है, और तब चार चीजें निश्चित होती हैं ।

१) कर्म का स्वभाव वह **प्रकृति बंध**

२) कर्म के काल का माप वह **स्थिति बंध**

३) कर्म पुद्गल के शुभ अशुभ रस की तीव्रता, मंदता वह **अनुभाग (रस) बंध**

४) कर्म पुद्गल के दलिक का मान वह **प्रदेश बंध**

**१) प्रकृति बंध :** मोदक अलग अलग प्रकार के होते हैं और उनकी असर शरीर पर अलग अलग होती है । सूंठ, मेथी वगैरह के मोदक स्वभाव से वात को दूर करते हैं । कितने मोदक पित्त को दूर करते हैं, कितने मोदक स्वभाव से कफ को दूर करते हैं ।

उसी तरह बंधा हुआ कर्म भी आत्मा के किसी न किसी गुण को ढंकता है..... आवरण करता है..... उस कर्म के स्वभाव को प्रकृति बंध कहते है ।

उदा. रुप-आत्मा के ज्ञान गुण को आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय, दर्शन गुण का आवरण करने वाला दर्शनावरणीय ।

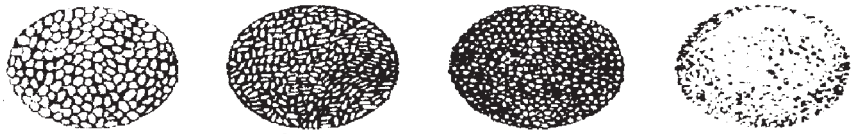

बुंदीका लड्डु मेथीका लड्डु तीलका लड्डु सूंठका लड्डु

**२) स्थिति बंध :** मोदक अलग अलग प्रकार के होते है, उसी प्रकार उसके अच्छे रहने का भी काल अलग अलग होता है । चूरमा का मोदक एक दिन अच्छा रहता है, (बूंदी) मोतीचूर के मोदक आठ दिन तक अच्छे रहते हैं, शीत ऋतु में उडद के मोदक, सालमपाक वगैरह एक महिने तक अच्छे रहते है, उसी प्रकार कर्म बंधता है, उसी

क्षण यह कर्म आत्मा के साथ कितने समय तक रहेगा यह निश्चित हो जाता है । कोई कर्म २ साल, ५ साल, ४ महिना १० दिन आत्मा के साथ रहे तो कोई पल्योपम और सागरोपम तक रहता है । इस तरह कर्म का आत्मा के साथ रहने का काल या समय स्थिति बंध कहलाता है ।

**३) रस बंध :** रस बंध को अनुभाग बंध भी कहते हैं । रस से आशय शक्ति विशेष से है । मोदक में मिठास होने से सामान्य रुप से मोदक मीठा ही होता है, परंतु उस मिठास में भी विविधता होती है । मेथी के मोदक मे कडवाहट होती है, उस कडवाहट में भी विविधता होती है, उसी परकार आत्मा के जुडते शुभ अशुभ रस में तरतमता होती है । कर्म बंध के समय रस में मंदता, तीव्रता, तीव्रतरता और तीव्रतमता देखने मिलती है, जिसे रस बंध कहा जाता है ।

**४) प्रदेश बंध :** मोदक के आकार में विविधता देखने मिलती है, छोटे मोदक, मध्यम मोदक तथा बडे मोदक जिनका वजन भिन्न भिन्न होता है । उसी प्रकार कर्म बांधते समय योगानुसार आत्मा कम या ज्यादा कर्म दलिकों के समुह को आत्मा के साथ जोडती है, उसे प्रदेश बंध कहते हैं ।

जिस प्रकार मोदक बनाते समय ही उसका स्वभाव, स्थिति, रस और प्रदेश निश्चित (नक्की) हो जाता है, उसी प्रकार कर्म बंध के समय ही ये चार चीजें अपने भावों के अनुसार निश्चित हो जाती है ।

कर्म बंध के चार प्रकार समझाने के पश्चात अब प्रथम प्रकृति बंध को विशेष से जानेंगे ।

## कर्म प्रकृति

कर्म की मूल प्रकृति आठ हैं । उत्तर प्रकृति एक सो अड्ठावन है ।

**इह नाण दंसणावरण - वेय - मोहाउ - नाम - गोआणि ।**
**विग्घं च पण - नव - दु - अट्ठवीस - चउ - तिसय - दु पण विहं ।।३।।**

**गाथार्थ :** यहाँ पांच - नऊ - दो - अड्ठावीस - चार - एक सौ तीन - दो और पांच भेदो वाला ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म है ।

कर्म की प्रकृति असंख्यात है, परंतु शुद्धात्मा के (सिद्धात्मा के) आठ गुण होने से उन्हे आवरण करने वाली आठ प्रकृति मुख्य हैं, उनके उत्तर भेद १५८ हैं ।

विशेषावबोधरुप ज्ञान को आवृत करे वह **ज्ञानावरणीय कर्म.**

सामान्यावबोध रुप दर्शन को आवृत करे वह **दर्शनावरणीय कर्म.**

जिस कर्म के परिणामस्वरुप जीव शाता अशाता अथवा सुख, दुख का वेदन / अनुभव करता है और आत्मा के अव्याबाध स्वरुप को आवृत करे वह **वेदनीय कर्म ।**

सम्यकत्व और सम्यक चारित्र से विकल (गुमराह) करे और आत्मा के अनंत चारित्र गुण को आवृत करे वह **मोहनीय कर्म ।**

दूसरे भव मे ले जाये और आत्मा की अक्षय स्थिति को आवृत करे वह **आयुष्य कर्म ।**

शरीर, इंद्रिय, रुप, रंग वगैरह देने वाला तथा आत्मा के अरुपी गुण को आवृत करने वाला **नामकर्म ।**

आत्मा को उच्च या नीच (अच्छे या खराब) कुल में जन्मावे तथा आत्मा के अगुरुलघु गुण को आवृत करे वह **गोत्र कर्म ।**

सभी सामग्री होते हुए भी दानादिक लब्धि का अंतराय करे तथा आत्मा के अनंतवीर्य गुण को आवृत करे वह **अन्तराय कर्म ।**

आठ मूल कर्म के नाम जानने के पश्चात अब उनकी उत्तर प्रकृति की संख्या बताते हैं -

| | |
|---|---|
| १. ज्ञानवरणीय कर्म के | ०५ भेद हैं । |
| २. दर्शनावरणीय कर्म के | ०९ भेद हैं । |
| ३. वेदनीय कर्म के | ०२ भेद हैं । |
| ४. मोहनीय कर्म के | २८ भेद हैं । |
| ५. आयुष्य कर्म के | ०४ भेद हैं । |
| ६. नाम कर्म के | १०३ भेद हैं । |
| ७. गोत्र कर्म के | ०२ भेद हैं । |
| ८. अंतराय कर्म के | ०५ भेद हैं । |
| कर्म प्रकृतिना कुल | १५८ भेद हैं । |

विरति वाटिका

# सम्यग् दर्शन

**समत्तमेव मेव मूलं निद्दिट्ठं जिनवरेहिं धम्मस्स । एगंपि दम्मकिच्चं न तं विणा सोहए नियमा ।।**

- श्री जिनलाभसूरि

जिनवरो ने धर्म का मूल सम्यक्त्व को कहा है, कारण कि शुद्ध सम्यकत्व द्वारा ही आत्मरुपी भूमि निर्मल हुई है (जैसे कि चित्रकार प्रथम भूमि को शुद्ध करने के बाद उस भूमि के उपर चित्रित चित्र जैसे असाधारण रुप से शोभित हो उठते है वैसे ही ) इसलीये सर्व धर्म के कृत्य सम्यक्त्व द्वारा आत्मशुद्धि किये बिना एक भी धर्म के कृत्य शोभा नहीं देते, इसलीये भव्यात्माओ को प्रथम सम्यक्त्व के द्वारा ही अपनी आत्मशुद्धि के बारे में प्रयत्न करना चाहिये ।

रे जीव ! कैसा महान है तेरा पुण्योदय !

मानव का देह मिला.... पूर्ण पांच इंद्रियों से मुक्त काया मिली.....

आर्य देश मिला.... श्रावक का कुल मिला.....

प्रभु महावीर का शासन मिला....

राग-द्वेष रहित वीतरागी सुदेव मिले.....

कंचन एवं कामिनी के त्यागी निर्गंथ सुगुरु मिले.....

दया से भरपूर श्रीसर्वज्ञ कथित धर्म मिला....

ऐसा सुयोग चौर्यासी लाख जीवायोनि में परिभ्रमण करते जीव को महान पुण्योदय से ही प्राप्त होता है ।

इसलीये हे जीव ! अब तू प्रमाद करना मत.....

सुखी जीवन जीने के लिये आचार एवं विचार दोनों का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना जरुरी है । पवित्र आचार तथा उम्दा विचारो के बिना मनुष्य सच्ची सुख-शांति अनुभव नहीं कर सकता ।

अनंत सुख के धाम समान मोक्ष के मार्ग दो नहीं.... एक ही हैं..... यह मोक्ष मार्ग तो विरति के राजमहल से होकर गुजरता है ।

सर्व विरति.... अथवा देशविरति.....

परंतु विरति के बिना उद्धार नहीं है....नहीं है..... और नहीं ही है.....

चलो ! हम सब आज ही विरति के लिये प्रयत्न करे ।

लेने जैसी तो सर्वविरति ही है.... स्वीकारने जैसा तो साधुजीवन है, परंतु वहां तक का सत्व जागृत न होता हो तो यथाशक्ति श्रावक के व्रतो की आराधना तो करनी ही चाहिये ।

आइये हम यहां श्रावक के जीवन योग्य विरति को स्वीकारने श्रावक के बारह व्रतो पर विचार करते हैं ।

विरति यदि महल हैं तो सम्यग् दर्शन उसकी नींव हैं .....

विरति यह मोती की माला हैं तो सम्यग् दर्शन यह धागा है....

विरति यह रथ है तो सम्यग् दर्शन उसका सारथी हैं....

इसलीये श्रावक जीवन को प्रकाशमान करते व्रतो को स्वीकारने से पहले सम्यक दर्शन का स्वीकार अत्यन्त आवश्यक है, इसीलिये तो यहां सर्वप्रथम सम्यग् दर्शन के स्वरुप का एवं उसके विविध अतिचारो की विचारणा करने में आयी है ।

समकित, सम्यग् दर्शन और सम्यग् दृष्टि यह सब पयार्यवाची शब्द हैं, सभी का अर्थ समान है, सम्यग् दर्शन यानी सुदेव-सुगुरु,सुधर्म में अटूट सच्ची श्रद्धा ।

श्रावक के धर्म के विषय में पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत मिलकर बारह व्रत है और इन व्रतो का मूल सम्यक्त्व जानना । इसमें अठारह दोषरहित ऐसे श्रीअरिहंत देव वो शुद्ध देवतत्व जानना, आठ प्रवचन माता के धारक ऐसे सुसाधु वो शुद्ध गुरुतत्व जानना, विनय मूल वाला ऐसा श्रीजिनप्रणीत धर्म वो शुद्ध धर्मतत्व जानना । इन तीनों तत्व पर श्रद्धा (सद्हणा) रखना वो समाकित कहलाता है, उस समकित की भाव से प्रतिपालना करनी चाहिये इन तीन तत्वो से विपरीत जो श्रद्धा (सद्हणा) हो उसे मिथ्यात्व कहा जाता है ।

द्रव्य से भाव से लौकिक लोकोत्तर, देवगत, गुरुगत एवं पर्वगत मिथ्यात्व है वो चार प्रकार का है, उसका त्याग करना चाहिये । ये चार प्रकार -

हरि यानि कृष्ण, हर यानि महादेव, ब्रह्म, सूर्यदेव इन्द्र चन्द्रमा, ग्रह देवता, गोत्रज देवता, गणेश दिकपाल, क्षेत्रपाल, स्कंददेव, (कार्तिकेय) कापिल, बुद्ध, हनुमंत यक्ष आदि की भक्ति करके उनको ही मुक्ति देने वाला मानना यह प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जानना ।

चरक वो सन्यांसी, परिव्राजक वो तापस ब्राह्मण, कौलिक, कापालिक ब्राह्मण एवं तापस ये मुझे संसार से तारेगें ऐसा समझे व उनकी आराधना करे वो दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व जानना ।

जिस श्रीवीतराग देव की प्रतिमा को अन्यदर्शनीओ ने ग्रहण किया हो उसे अपरपरिगृहित जिनबिंब कहा जाता है, ऐसे जिनबिंब तथा वैरोट्या देवी, श्रीशीतलनाथ का ब्रह्म नामक यक्ष तथा सुपार्श्वनाथ की शांतादेवी, इसी तरह श्रीजिनशासन के अन्य अधिष्टायिक देव, देवियों का देवबुद्धि से पूजन करना वो तीसरा लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व कहलाता है तथा -

**पासत्था -** जो साधु दोषित आहार पानी वोहराते है और साधुपने का मिथ्यागर्व रखते है, ज्ञान,दर्शन,चारित्र के उपकरण पास रखकर भी उसका लाभ नहीं उठाते वो

**उसन्ना -** जो प्रमादवश सिर्फ देह का पोषण करते है और सयम्मीकरणी में निर्बल जैसे हो वो उसन्ना ।

**कुशील -** ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पालन करने योग्य आचारो का पालन न करे वो कुशील ।

**संसक्त -** जो साधु दुसरो के गुणों को सहन नहीं करे, तथा सुखशीलता का आचरण हो, हिंसादिक कर्मबंध के कारणों का सेवन करे वो संसक्त ।

**आहाछंद -** जो उत्सूत्रप्ररुपणा करे, मन में आये ऐसा बके, परनिंदा करे, दूसरों पर आरोप लगाये, लोगों में पूजा जाय इसके लिये मिथ्या आडंबर करे वो आहाछंद ।

**निन्हव -** श्रीवीतराग परमात्मा से अलग अपना स्वयं का मत प्रस्थापित करे वो निन्हव ।

ये सब द्रव्यलिंगी कहलाते है, उनका गुरु, बुद्धि से पूजन करना वो चौथा लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व कहलाता है ।

इस समकितव्रत के पांच अतिचार है वो छोडना चाहिये. ये पांच अतिचार कौन कौन से है ? यह बताते है ।

**१. शंका -** जीव - अजीव आदि नवतत्व में से किसी भी एक तत्व के बारे में मन में संदेह रखा हो कि यह बात कैसे होगी ? या नहीं होगी, अथवा देव,गुरु, धर्म एवं सिद्धांत यानि आगम के प्रति मन में संदेह धारण किया हो, शंका की हो तो प्रथम शंका नामक अतिचार जानना ।

**२. कांक्षा -** अन्य जो पांखडी दर्शन है उन्हें ग्रहण करने का मन में अभिलाष धारण किया हो या सारे धर्मो को समान माना हो वो दूसरा कांक्षा नाम का अतिचार जानना ।

**३. वितिगच्छा -** जिनेश्वर परमात्मा द्वारा बताये गये तप, संयम, नियम, आदि क्रिया कर रहे है तो यह धर्म करने से देवपदवी तथा मोक्ष आदि फल मिलेगा की नहीं मिलेगा ? ऐसा संदेह मन में धारण किया हो अथवा साधु-साध्वी के मलिन शरीर देखकर दुगंच्छा की हो तो तीसरा वितिगच्छा नाम का अतिचार जानना ।

**४. परपासंडी प्रशंसा -** अन्य परदर्शन के तप आदि की महानता देखकर तथा उनकी विद्या की ख्याति देखकर उसकी प्रशंसा की हो वो परपासंडी प्रशंसा नाम का चौथा अतिचार जानना ।

**५. परपासंडी संथुओ (संस्तव) -** परदर्शनीय के साथ संस्तव, उनके मुख्य, विशेष व्यक्ति के साथ परिचय तथा उनके साथ प्रीतिकारक वार्तालाप करना उनके उपर प्रीति रखना, उनकी भक्ति करना, उन्हैं दान देना, आलाप, संलाप आदि किया, कराया हो तो पांचवा परपासंडी संथुओ नामक अतिचार जानना ।

सम्यग् दर्शन के स्वीकार हेतु की प्रतिज्ञा है, ''मै आजीवन राग द्वेष से रहित ऐसे वीतराग.... अरिहंत प्रभु को सुदेव के रुप में.... निर्ग्रंथ पंचमहाव्रतधारी साधु को सुगुरु के रुप में तथा श्रीसर्वज्ञ भगवंत द्वारा प्ररुपित, दयामय धर्म को सुधर्म के रुप में स्वीकरता हुं। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं मानूगा।''

सम्यग् दर्शन न हो तो प्राप्त करने और हो तो निर्मल करने नीचे के नियम सहायक बनते है -

१. मैं प्रतिदिन जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन करुंगा ।
२. मैं प्रतिदिन जिनेश्वर प्रभु की पूजा करुंगा ।
३. मैं प्रतिदिन प्रभुजी की अष्ट प्रकारी पूजा करुंगा ।
४. मैं जिनेश्वर प्रभु के नित्य त्रिकाल दर्शन करुंगा ।
५. मैं प्रतिदिन नियमित चैत्यवंदन करुंगा ।
६. मैं पर्वतिथि को जिनालय की सर्व प्रतिमाजी को तीन-तीन खमासमणे दुंगा ।
७. मैं साल में स्नात्रपूजा, बडी पूजा पढाउंगा ।
८. मैं जीवन में कम से कम एक भगवान भराऊंगा ।
९. मैं जीवन में कम से कम एक भगवान की प्रतिष्ठा कराऊंगा ।
१०. मैं वर्ष में एक बार अवश्य सिद्धाचल की यात्रा करुंगा ।
११. सारे तीर्थो में सदा ब्रह्मचर्य व्रत पालुंगा तथा नवकारसी चौविहार करुंगा ।

१२. तीर्थयात्रा के दरम्यान अभक्ष्य, अनंतकाय, रात्रिभोजन का त्याग करुंगा ।
१३. मैं प्रतिदिन नवकारमंत्र की एक पूर्ण माला गिनुंगा ।
१४. मैं प्रतिदिन सोते वक्त सात एवं उठते समय आठ नवकार गिनूंगा ।
१५. मैं जीवन में एक बार अवश्य नौ लाख नवकारमंत्र का जाप करुंगा ।
१६. मैं जीवन में एक बार अवश्य जिनभक्ति महोत्सव कराऊंगा ।

चैत्यवंदनके प्रारंभसे 'उवसग्गहर' तक योगमुद्रा

जयवीयराय से आभवम तक मुक्ताशुक्तिमुद्रा

वारिज्जइ से जैन जयति शासन तक

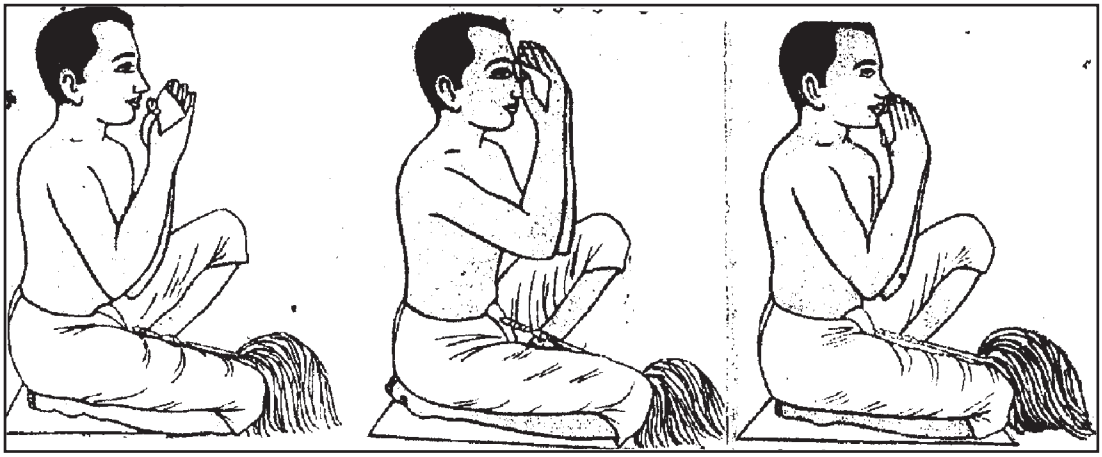

चैत्यवंदनकी आसन-मुद्रा

जयवीयराय वक्तकी मुद्रा

अर्थाजयवीयराज बोलनेके पश्चात हाथकी मुद्रा